स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

Vol. 7, ISSUE-2 (APRIL-JUNE 2018) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :
चौ. एम. सिहाग

प्रधान सम्पादक :
डॉ. रामफल दलाल

सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

अतिथि सम्पादक :
प्रो. लक्ष्मीप्रसाद कर्ष
बिलासपुर (छत्तीसगढ़)

सहयोगी सम्पादक :
खुशवंत माली
शोधार्थी, पाली (राजस्थान)

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर

सह सम्पादक :
समुद्र सिंह

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग
चौ. बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी

प्रकाशक :
गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी–127021 (हरियाणा)

Scanned by CamScanner

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	लक्ष्मीप्रसाद कर्ष	6–7
2.	सहयोगी सम्पादक की कलम से	खुशवंत माली	7–7
3.	जीवन मूल्यों की स्थापना करता अमृत कलश (खोजना होगा अमृत कलश)	संजय कुमार	8-9
4.	जुर्रत ख्वाब देखने की काव्य संग्रह की सामाजिकता की भावना	डॉ० ज्योति सिंह	10-18
5.	कबीर और निराला का काव्य स्वानुभूति पर आधारित है	सफलता सरोज	19-21
6.	आदिवासी हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श : समाज वैज्ञानिक अध्ययन	अनीश कुमार	22-24
7.	13वीं विधानसभा निर्वाचन के परिणामों का विश्लेषण : भाजपा के हार के कारण	पूजा प्रजापत	25-27
8.	राजनीतिक अस्थिरता : चुनाव, जातिवाद, दलबदल प्रवृत्ति	डॉ. मोहिनी दहिया	28-30
9.	डॉ. सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' में दलित जीवन की व्यथा	के. साईलता	31-36
10.	भारतीय संविधान में शैक्षिक अनुच्छेदों में हुए संशोधनों पर एक अध्ययन	डॉ.रमेश कुमार	37-41
11.	संकेत बिन्दु संस्कृत साहित्य, संस्कृतिक : दशा एंव दिशा	कृष्ण कुमार	42-43
12.	महाकवि जायसी और सूफीमत	डॉ0 वसुन्धरा उपाध्याय	44-46
13.	Teaching, Learning and inclusive education : The challenge of teachers' training for inclusion	Mr.Ram Kumar Verma	47-49
14.	साहित्य साधना : सृजन, आस्वाद्य तथा समीक्षा	डॉ. चित्रा. एन. आर	50-55
15.	समाज में शांति एवं अहिंसा की स्थापनाः धर्म, अध्यात्म और राजयोग की भूमिका	मेधावी शुक्ला	56-59
16.	ऐतरेय ब्राह्मण–तैतिरीयब्राह्मणयोः पर्यावरण विश्लेषण्	Chandan Das	60-61
17.	स्वाधीनताकालीन हिंदी पत्रकारिता	डॉ ज्योति सिंह	62-69
18.	दलित समाज के संघर्ष एवं स्वाभिमान की अर्थ भरी कहानियाँः सन्दर्भ रत्न कुमार सांभरिया का कहानी–संसार	डॉ. विवेक भांकर	70-74
19.	Assessment of Nutritional Profile of Child Labourers Residing {with special Reference to District Hanumangarh (Rajasthan)}	Ms. Veerpal kaur Dr. Usha Kothari	75-77
20.	भाग्यवती में अभिव्यक्त जीवन–दर्शन	शीनम जिंदल	78-81
21.	A comparative study of Nutritional status of Tobacco Chewing Adult male and female residing with Special Reference to District Hanumangarh (Rajasthan)	Ms. Nisha Kashyap, -Dr. Usha Kothari	82-86
22.	राजेन्द्र यादव की कहानियों में शोषित एवं अपमानित नारी	डॉ. काकानि श्रीकृष्ण	87-89
23.	पूजा और नफरत – देशप्रेम की अभिव्यक्ति	डॉ. जयभगवान शर्मा	90-91
24.	गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के समक्ष चुनौतियां	डॉ॰ रविकान्त	92-92
25.	स्वतंत्र सेनानी, आजाद हिन्द फौज का धोतक : सुभाष चन्द्र बोस	Vijay Kumar Meghannavar	93-93
26.	कमलेश्वर : मध्यवर्ग और 'समुद्र में खोया हुआ आदमी'	डॉ. नरेश कुमार सिहाग	94-97

Web. : www.grngo.org
Impact Factor : 2.587

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
April-June 2018 Page No. : 22-24

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

आदिवासी हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श : समाज वैज्ञानिक अध्ययन

आदिवासी शब्द 'आदि' और 'वासी' दो शब्दों से मिलकर बना है, जिसका सामान्य अर्थ है 'आदिकाल से निवास करने वाला'। माना जाता है कि आदिवासी भारत के मूल निवासी हैं। भारतीय संविधान में 'आदिवासी' शब्द के लिए 'जनजाति' शब्द का प्रयोग हुआ है। जिन्हें विशेष प्रावधान के तहत इनके संरक्षण और अस्तित्व की रक्षा का प्रयास किया गया है। सदियों से शोषण के शिकार हुए आदिवासी समुदाय आज अपने अस्तित्व और हक को ढूंढ रहे हैं। स्वयं की पहचान और रक्षा के लिए संगठित हो रहे हैं। जनगणना में भारत सरकार से अपने लिए अलग पहचान मांग रहे हैं। अमूमन सभी भारतीय आदिवासी समुदाय के पास अपनी एक स्वतंत्र भाषा है। कुछ आदिवासी भाषाओं को भारतीय संविधान के आठवीं अनुसूची में भी डाला गया है।

अध्ययनों में सामने आया है कि प्राचीन काल में आदिवासी बहुत शान से अपनी विशिष्ट दुनिया में जीवन व्यतीत कर रहे थे। वे अपनी ही बनाई हुई जीवनचर्या और जिंदगी में व्यस्त रहते थे। बाद में बाहरी घुसपैठ के चलते उनके जीवन, भाषा, संस्कृति को पुनर्नियोजित तरीके से ख़त्म किए जाने की कोशिशें शुरू हुईं। कालांतर में इनकी स्थितियों में बदलाव आने लगा। धीरे–धीरे ये लोग मुख्य धारा के समाज से कटकर अलग–थलग पड़ने लगे। वर्तमान परिदृश्य में आदिवासियों की स्थिति अत्यंत दयनीय हो गई है। आज यह संकट और ज्यादा बढ़ गया है। पूंजीवादी और सत्ताधारी लोग उनका जमकर शोषण कर रहे हैं। उनको गुलाम बनाने की कोशिश की जा रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी भारत में इनको वास्तविक स्वतंत्रता नहीं मिल पा रही है। विकास के नाम पर उनको जंगलों से खदेड़ा जा रहा है, उनकी जमीनें छीनी जा रही है, साथ ही उनकी संस्कृति नष्ट होती जा रही है। उद्योगपति, अन्य आदिवासी विरोधी संगठनों और सवर्णों द्वारा आदिवासियों को वनवासी के नाम से प्रचारित किया जा रहा है, जबकि वास्तव में वे यहाँ के मूल निवासी हैं।

आदिवासी विमर्श एक ऐसा विमर्श है, जिसमें आदिवासी समाज के रहन–सहन, उनकी संस्कृति, परम्पराएँ, अस्मिता, साहित्य और अधिकारों के बारे में चर्चा की जाती है। हिन्दी साहित्य के विविध विधाओं में आदिवासी गाथाएँ देखने को मिलती हैं। सन 1857 की क्रांति से लेकर स्वतन्त्रता आंदोलन तक इनके योगदान की चर्चा देखने को मिलता है। समय व परिस्थिति के चलते धीरे–धीरे मुख्य धारा से अलग होते गए। 'आदिवासी' एक ऐसा समुदाय हैं, जिसे सामाजिक समानताओं के दायरे से बाहर रखा गया। लेकिन वह अपनी सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक व तात्कालिक स्थितियों से लगातार संघर्षरत रहा। आदिवासियों ने सदैव बाहरी सभ्यता, संस्कृति, पूंजीवाद और आर्थिक साम्राज्यवाद के खिलाफ अपना विरोध प्रकट किया। वर्तमान में वह अपनी अस्मिता के प्रश्नों से जूझ रहे हैं । इसके कारण उनके सामने पहला प्रश्न उनकी पहचान का है कि आदिवासी कौन हैं? वास्तव में इनका निवास स्थान हमेशा से दुर्गम जंगलों पहाड़ो के गोद में रहा है। विशिष्ट संस्कृति, भाषा, साहित्य इनकी पहचान है। जल, जंगल और जमीन, इन तीन शब्दों के सारगर्भित स्वर को 'आदिवासी' कहा जा सकता है। इनके मूल अर्थ में प्रकृति, सत्य और नैतिकता है। यह माना जाता है इनके द्वारा इस देश की संस्कृति का सबसे पहले निर्माण हुआ। वर्तमान में यह अपने भोलेपन के कारण लगातार छले जा रहे हैं। जिसके कारण आदिवासियों के लिए 'अस्मिता' बोध अथवा अपने आपको बचाए रखना एक बड़ा प्रश्न उठ खड़ा है।

प्रारम्भ में आदिवासियों में शिक्षा का अभाव होने के कारण उनका साहित्य लिखित रूप में नहीं मिलता है। जबकि उनका मौखिक साहित्य (वाचिक परंपरा) अत्यंत समृद्ध रहा है। आदिवासी समाज में लोकगीत, लोक–कथाएँ, मुहावरें, कहावतें आदि की वाचिक परंपरा भरपूर मात्रा में हैं। पिछले 20–25 साल से आदिवासियों को केंद्र में रखते हुए हिन्दी में साहित्य लिखा जा रहा है। इसमें कुछ आदिवासी रचनाकार हैं, अधिकतर गैर–आदिवासी रचनाकार हैं। गैर–आदिवासी लेखक में कुछ ऐसे लेखक हैं, जिन्हें आदिवासियों के बारे में बहुत कम समझ है। थोड़ी बहुत जानकारी हासिल कर उन्होंने साहित्य लिखने का प्रयास किया है। लेकिन कुछ लेखक ऐसे भी हैं जो आदिवासी समाज में रहते हुए उनके दर्द को महसूस करते हुए उनके प्रति सच्ची सहानुभूति दिखाते हुए लिख रहे हैं। हिन्दी साहित्य के अंतर्गत लिखे गए आदिवासी

साहित्य की विधाओं में कविता, कहानी, उपन्यास आदि महत्वपूर्ण विधा रही है। आदिवासी कवियों ने साहित्य के विविध विधाओं के माध्यम से भारतीय संस्कृति, समाज व भाषा के दयनीय दशा का वर्णन करते हैं। समाज की यथास्थिति को भी दिखाने का प्रयास करते हैं। हिन्दी साहित्य में लगभग सन् 1990 के बाद से इनके लेखन में तीव्रता आई है। जिनमें आदिवासी विमर्श अपनी अमित छाप साहित्य में छोड़ चुका है। इसके साथ स्त्री जीवन और समाज की बात किए बिना साहित्य का रुख अधूरा माना जा सकता है।

आदिवासी कथा साहित्य में विभिन्न सामाजिक विद्रोह, नारी का जीवन संघर्ष, विस्थापन, अस्तित्व की समस्या और शिक्षा, पूंजीवाद का विरोध जैसी समस्याएँ प्रमुख रूप से दिखाई देती हैं। आदिवासी कवियों में निर्मला पुत्तुल, वारुण सोनवणे, हरिराम मीणा, अनुज लुगुन, केशव मेश्राम, महादेव टोप्पो, डॉ. मंजू ज्योत्सना, सरिता बड़ाइक, डॉ. राम दयाल मुंडा, वंदना टेटे, रमणिका गुप्ता, जसिन्ता केरकेट्टा आदि ने समाज और संस्कृति का हवाला देते हुए शोषण और संघर्ष को अपनी कविताओं के माध्यम से साहित्य के मुख्य फ़लक पर लाने का कार्य किया है। सभी ने संथाली, गोंडी, बंजारा, हो आदि जीतने भी आदिवासी समुदाय हैं सभी समुदायों के सभ्यता व समस्याओं को उठाते हैं। "वीरभारत तलवार कहते हैं कि "आदिवासी समाज के बारें में लिखना सबके लिए मुमकिन नहीं, क्योंकि वह ऐसा खास समाज है जो ऐतिहासिक विकास कि दृष्टि से हमारी वर्तमान अवस्था से बहुत अलग मंजिल पर है। उसके सामने खड़े सवाल, उनका धर्म, संस्कृति, उनकी भाषा और जीवन निर्वाह की परिस्थितियाँ सभी कुछ हमारे समाज से बहुत अलग और अनजानी हैं।"[1]

भूमंडलीकरण के आगमन से और उपभोक्तावादी संस्कृति से गहरे स्तर पर प्रभावित होते आदिवासी समुदाय में भी उन विकृतियों को जगह मिली जो समान्यतया उनमें पहले से नहीं थी। अन्य समाजों की तरह वहाँ भी स्त्री एक 'वस्तु' के रूप में परिवर्तित होने लगी। पितृसत्तात्मक समाज ने वहाँ भी अपनी पकड़ मजबूत कर ली। कुछ जगहों (आदिवासी समुदायों में) पर आज भी मातृसत्तात्मक व्यवस्थाएँ हैं लेकिन वह भी 'रबर स्टाम्प' की ही तरह काम करती हैं। "आधुनिकतावाद उत्तर आधुनिकतावाद और नव–आर्थिक उपनिवेशवाद ने आर्थिक ढाँचे को नया स्वरूप दिया है। प्रौद्योगिकी और वैज्ञानिक विकास ने एक नए समाज को गढ़ा है। भूमंडलीकरण बाज़ारीतंत्र की प्रक्रिया में पूरी तरह से डूबता नज़र आता है। इसने विभिन्न देशों के बुनियादी ढाँचे को ही बदलने का प्रयास किया। इसने अर्थ–नीति के आधार पर पूँजीवादी विकास की एक मंडी तैयार की । यह मंडी पूँजीपति को ही लाभ पहुंचाती है। कहीं न कहीं यह सत्य के निकट है कि भूमंडलीकरण, उदारीकरण और बाजारवाद एक पूँजीवादी और साम्राज्यवादी फलसफ़ा के अभिन्न अंग हैं।"[2]

आदिवासी साहित्य आदिवासी समाज के प्रतिबद्धता की यथार्थ अभिव्यक्ति है। जब 'आदिवासी' शब्द साहित्य से जुड़ता है तो एक ऐसी साहित्यिक धारा की ओर संकेत करता है जो मानवीय सरोकार और सम्वेदनाओं की यथार्थवादी अभिव्यक्ति बनता है। यह एक ऐसा साहित्य है, जिसमें आदिवासियों ने स्वयं अपनी पीड़ा, शोषण और संघर्ष के विरूद्ध साहित्यिक अभिव्यक्ति दी है। साहित्यकार कोई विशिष्ट व्यक्ति नहीं होता, वह अपने अस्तित्व के लिए पग–पग पर समाज के ऊपर निर्भर करता है। समाज से अलग उसका कोई अस्तित्व ही नहीं होता, आदिवासी साहित्य की मूल भावना भी यही है। इसलिए यह सामाजिक प्रतिबद्धता का साहित्य है। आदिवासी चिंतको व लेखकों की यह प्रतिबद्धता मानवतावाद और समाजिकता के प्रति न्याय है। वर्तमान समय में आदिवासी स्त्री के सामने स्त्री–अस्मिता का प्रश्न सबसे बड़ा प्रश्न है। स्त्री–अस्मिता की लड़ाई, स्त्री स्वाभिमान की लडाई है। भारतीय समाज में स्त्री अस्मिता का प्रश्न आधुनिक चेतना का प्रतीक है। आधुनिक स्त्री को जब अपनी भारतीय परंपरा में अपना चेहरा दिखाई नहीं देता है तब वह अपनी परंपरा की तलाश करती हुई इतिहास में लौटती है और अपने को स्थापित कराना चाहती है। आदिवासी महिलाओं के सामने ये समस्याएँ दुगुनी हैं। साहित्य में इन महिलाओं का चित्रण न के बराबर हुआ है। आदिवासी आंदोलनों पर एक नजर डाले तो आदिवासी महिलाएं उसमें बढ़–चढ़ कर भाग लेती हैं। किन्तु किताबों में इन्हें हाशिये पर डाल दिया गया है। आदिवासी साहित्य अस्मिता की खोज एवं शोषण के विविध रूपों से उद्घटित तथा आदिवासी अस्मिता व अस्तित्व के संकटो और उसके खिलाफ हो रहे प्रतिरोध का साहित्य है। आदिवासी लेखन और उसमें स्त्री विमर्श में अभी तक 'स्वानुभूति बनाम सहानुभूति' जैसें बहस केन्द्र से दूर परिधि के इर्द–गिर्द घूम रही है। आदिवासी समाज में स्त्री अपनी आजादी में किसी को रोक–टोक स्वीकार नहीं करती है। यदि उसकी मान्यताएं उसके आड़े आती हैं तो वह उसका विरोध कर सकती है। झारखंड आंदोलन की अग्रणी विदूषी आदिवासी लेखिका डॉ. रोज केरकेट्टा इस संदर्भ में लिखती हैं, 'आदिवासी शिष्ट सात्यि में स्त्री श्रम, सहिष्णुता, ममत्व से पूर्ण तो मिलती है, लेकिन अपने लिए और परिवार के लिए निर्णय लेती हुई कम मिलती है। वह जीने के लिए कठिन परिश्रम करती है, देश–परदेश जाती है, सेवा करती है स्वयं

को नहीं, दूसरों को प्रसन्न रखने के लिए।"[3]

अपने ही समाज में उसे एक भोग की वस्तु भर समझा जाता है। वह पुरूष के चंगुल में कैसे फँसी? रमणिका गुप्ता के शब्दों में, "मनुष्य के मौलिक जीन्स से भी अधिक मनुष्य की भौगोलिक, आर्थिक, राजनैतिक स्थितियों और परिवेश पर ही मनुष्य का विकास आधारित है। स्त्री पर भी यही लागू होता है । बावजूद इसके, एक साझी व्याख्या तो स्त्री की समझ में आ ही गई है कि पुरूष ने उसके मन को गुलाम बनाने से पहले उसे परिवार, ब्याह, संतान और समाज की लक्ष्मण रेखाओं के बाड़े में कैद करके उसके शरीर को गुलाम बनाया और उसे सभी अधिकारों से वंचित किया ?। पुरूष को जब जरूरत हो प्यार, अलिंगन व चुंबन के हथियार का इस्तेमाल कर या उसके रूप का बखान कर उसे गौरवान्वित किया, सर्वोत्तम करार दिया, लेकिन उसके सब अधिकार छीन लिए ताकि वह उसी के प्रति समर्पित रहे।"[4]

साहित्य में जहाँ कहीं आदिवासी स्त्री का चित्रण हुआ है वहाँ हम आदिवासी स्त्री को मात्र स्वछन्द यौन की वस्तु, लुटी–पिटी और क्षत–विक्षत रूप में चित्रित किया हुआ ही देखते हैं। वंदना टेटे लिखती है– "भारतीय साहित्य में आदिवासी महिलाएँ परदेशी के प्रेम में देह सौंपती, दाई, आया, सेविका आदि के रूप में मार खाती, बलात्कार भोगती हुई ही दिखाई देती हैं। अस्मिता, स्वशासन और आत्मनिर्णय के अधिकार के लिए संघर्ष करती हुई आदिवासी स्त्रियाँ साहित्य और फ़िल्मों में एकसिरे से ग़ायब हैं ।"[5] आदिवासी स्त्री भारतीय समाज का एक ऐसा वर्ग जिसके लिए स्वतंत्रता, समानता और न्याय जैसी आधुनिक लोकतांत्रिक अवधारणाएँ कल्पनालोक के विषय हैं। हिंदी साहित्य के संसार में स्त्री और दलित विमर्श जिस प्रवृत्ति के साथ आगे आया है उससे आदिवासी साहित्य भिन्न है। शिक्षा, आधुनिकता व भौतिकता से दूर होने के कारण आदिवासी स्त्री परम्परागत स्त्री की तरह ही पितृसत्तात्मक व्यवस्था के साये में जीने को अभिशप्त है। आदिवासी स्त्री वर्ग का भारतीय समाज व भारतीय स्त्री के व्यापक ढाँचे में समग्रता के साथ विश्लेषण करके इसके जीवन यथार्थ व चुनौतियों को नहीं समझा जा सकता क्योंकि इस वर्ग की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक जीवन परिस्थितियाँ व चुनौतियाँ बहुसंख्यक समाज से भिन्न हैं और इसके लिए आवश्यक है कि उनके बीच जाकर उनकी स्थिति का विश्लेषण किया जाए।

आदिवासी लेखन जीवन का लेखन है यह कल्पना और मनोरंजन का क़िस्सा नहीं है और न ही आदिवासी औरतें नुमाईश की वस्तु है। वे दर्द सहने की आदी है उनका जीवन कठोर संघर्ष की गाथा कहता है किन्तु मुक्ति की बैचेनी तो उनमें भी है। इनकी निगाहें अब उन लोगों को पहचानने लगी हैं जो आदिवासी स्त्रियों को वस्तु मानते आए हैं और आदिवासी समाज को सस्ता मज़दूर बनाकर उनकी संस्कृति, भाषा, जल, जंगल, ज़मीन को हथिया कर उन्हें पलायन के लिए मजबूर करते हैं। आदिवासी साहित्य में भी महिलाओं की उपस्थिति नहीं के बराबर है और है भी तो उसी तरह से जैसा कि गैर–आदिवासी समाज द्वारा रचित साहित्य में। यही विडम्बना आदिवासी समाज की स्त्रियों को अन्याय और शोषण के विरूद्ध आवाज उठाने के लिए प्रेरित करती हैं। आज स्त्री जाग गयी है। आदिवासी समाज भी महिलाओं के अधिकारों को लेकर सजग हो गया है। अब वह लिखने, बोलने व आवाज उठाने से कतई नहीं कतराती हैं। बस जरूरत है उन्हें शासन और समाज के सक्रिय सहयोग और सहभागिता की नहीं तो उसे एक बार फिर से 'सिनगी दई' बनते देर नहीं लगेगी।

संदर्भ ग्रंथ :

1. तलवार, वीरभारत, झारखंड के आदिवासियों के बीच, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2008, पृष्ठ 449
2. सिंह वी. एन., सिंह जनमेजय, आधुनिकता एवं नारी सशक्तिकरण, रावत पब्लिकेशन्स, 2010, पृष्ठ 57–58
3. संपादकीय, खरी खरी बात, युद्धरत आम आदमी, (सं.) रमणिका गुप्ता, पूर्णांक–108, विशेषांक, 2011 (स्त्री–मुक्ति आंदोलन पर केन्द्रित कविता विशेषांक, भाग–1)
4. केरकेट्टा, डॉ. रोज, आदिवासी संस्कृति और साहित्यः स्त्री का दर्जा
5. टेटे, वंदना : आदिवासी साहित्य परम्परा और प्रयोजन, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, रांची (झारखंड), 2013, पृष्ठ 72

–अनीश कुमार, पी–एच.डी. शोध छात्र, हिन्दी विभाग
सांची बौद्ध भारतीय– ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय,
बारला, रायसेन, मध्य प्रदेश